अक्टूबर–दिसम्बर 2024

रेवान्त

साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका

मूल्य : सत्तर रुपये मात्र

स्मृति

धर्मेंद्र कटियार
(1950-2024)

एक

अगर सच बोल करके हम गलत हैं
नहीं जो बोलते क्या कम गलत हैं

तुम्हारे सही को क्यूँ सही माने
बताएँ तो कहाँ पर हम गलत हैं

इबादत गाह मयख़ाने न होते
नशे से अगर होते गम गलत हैं

शहर के वास्ते गर कह रहे हैं
गजल में बहुत पेंचों-ख़म गलत हैं

भरेंगे जख्म कैसे सरहदों के
दवाएँ गलत है, मरहम गलत हैं

सिमटता काफिला यूँ जा रहा है
उठाए हाथ में परचम गलत है

दो

हवा कह रही है कि पाला बदलिए
बिना छत की है पाठशाला बदलिए

खण्डर हो गई है इमारत पुरानी
कहाँ तक छुड़ाएँगे जाला बदलिए

यकीनन है उनपे कोई मास्टर-की
मुनासिब है गुजराती ताला बदलिए

गए छोड़ गोरे जिसे कोट-सा है
कम से कम वो कानून काला बदलिए

रही झुक है सरकार ज्यादा ही दाएँ
मियाँ कुछ सियासी मसाला बदलिए

मक़बूल जायसी
(1946–2024)

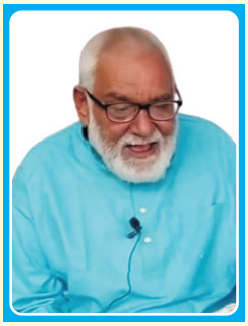

एक

मुफ़लिस तो है मजबूर जो तन बेच रहा है
ज़रदार को क्या फ़िक्र चमन बेच रहा है।

दीवानों का सीना तो है राज़ों का खज़ाना
हर अहल-ए-ख़िरद अपना चमन बेच रहा है।

अक्सर मैं यही सोचता रहता हूँ शब-ओ-रोज़
क्यों अहल-ए-क़लम अपना सुख़न बेच रहा है।

है अहल-ए-वफ़ा को उसी गुलचीं से ताल्लुक
गुलशन में जो कांटों की चुभन बेच रहा है।

इस दौर में बातें ना करो अहद-ए-वफ़ा की
हर बज़्म में हर फ़र्द सुख़न बेच रहा है।

बिकता था कभी मिस्र के बाज़ार में यूसुफ़
ये दौर तो मक़बूल कफ़न बेच रहा है।

दो

सलामी पर सलामी हो रही है।
दगाबाज़ी आवामी हो रही है।

जो है कानून साज़ी का ठिकाना,
वहाँ पर बद-कलामी हो रही है।

फ़रेब व झूठ से हस्ती हमारी,
बहुत नामी गिरामी हो रही है।

हमारे कर्म रावण से हैं मिलते,
ज़बानी राम नामी हो रही है।

यज़ीदियत है छाई चार जानिब,
फ़िज़ा कूफ़ी व शामी हो रही है।

न कोई मीर बन पाया न ग़ालिब,
फ़क़त क़ायम मुकामी हो रही है।

रेवान्त

साहित्य एवं संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका

अंक : 43

अक्टूबर-दिसम्बर 2024

प्रकाशक

ऐश्वर्या सिन्हा

संरक्षक

आत्म प्रकाश मिश्र

प्रधान संपादक

कौशल किशोर

संपादक

डॉ. अनीता श्रीवास्तव

सलाहकार

सरोज सिंह, रतन कुमार श्रीवास्तव

नीरजा शुक्ला, नीमा पंत एवं डॉ. सुधा मिश्र

उप संपादक

विमल किशोर, रोली शंकर, कुसुम वर्मा,

भावना मौर्य, नम्रता मिश्रा एवं राजेश मेहरोत्रा

कानूनी सलाहाकार

नीलम सिंह 'एडवोकेट'

संपादकीय कार्यालय

फ्लैट नं. 88, सी-ब्लाक, लेखराज नगीना,

चर्च रोड, इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016

मोबाईल : 9839356438, 9621691915

E-mail : anitasrivastava249@gmail.com

kaushalsil.2008@gmail.com

मोबाईल : 8400208031

मूल्य : 70:00

वार्षिक सदस्यता-400 रुपये, पांच वर्ष-1500 रुपये

आजीवन सदस्यता : 4000

संस्थाओं के लिए सदस्यता शुल्क

वार्षिक : 500 रुपये, पांच वर्ष : 2000 रुपये

आजीवन : 6000 रुपये

(मनीआर्डर, चेक, बैंक ड्राफ्ट द्वारा समस्त भुगतान 'रेवान्त पत्रिका' के नाम से लिये जायेंगे)

प्रकाशित रचनाओं के विचार से संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं। समस्त विवाद लखनऊ न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

इस बार...

संपादकीय

'यह दोनों ओर पानी मारना है' 2

नया वर्ष प्रेम, शान्ति और सद्भाव का वर्ष हो 4

कविताएँ

प्रभा मुजुमदार, इरानाथ श्रीवास्तव, रंजना पोहनकर 5

नीरजा शुक्ला 'नीरू' और रश्मि लहर

काल से होड़

हूबनाथ पाण्डेय और रीता दास राम की कविताएँ 23

आलेख

आलोचना के मायने : सुशील कुमार 13

प्रेमचन्द की लड़ाई अब भी जारी है : रविभूषण 20

सृजन के समकालीन सरोकार 39

संदर्भ डी.एम. मिश्र की ग़ज़लें : गोपाल गोयल

स्त्री प्रतिरोध के प्रतिमान : अमिता शीरीं 45

ग़ज़लें

डी.एम. मिश्र 43

रतन कुमार श्रीवास्तव 58

कहानी

गुलाबी दिल : दीपक शर्मा 30

दोष किसका : डॉ. अखिलेश निगम 'अखिल' 33

आधी आबादी

मेरी माँ : जड़ के बिना पेड़ का अस्तित्व नहीं : विमल किशोर 49

व्यंग्य कथा

एक टैलेंटेड लेखक की शौर्यगाथा : अलंकार रस्तोगी 53

कविताएँ

स्वपन नाग, उपेन्द्र कुमार, हेमन्त कुमार 55

प्रयास जोशी और राजेश कुमार सिन्हा

फिलिस्तीन कविताएँ 64

आवरण : मधुबनी पेंटिंग

शब्द संयोजन : मनोज श्रीवास्तव

संपादकीय

'यह दोनों ओर पानी मारना है'

'जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं है। यहां तो उन उपासकों की आवश्यकता है जिन्होंने सेवा को ही सार्थकता मान लिया है, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मोहब्बत का जोश हो।.... हम तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं और सादी जिंदगी के साथ ऊंची निगाह हमारे जीवन का लक्ष्य है। जो आदमी सच्चा कलाकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता है।'

यह कथन है प्रेमचंद का। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने यह बात कही थी। इस मौके पर उनके द्वारा 'साहित्य का उद्देश्य' विषय पर दिया गया अध्यक्षीय भाषण साहित्य का घोषणा पत्र माना जाता है। यह हमें बार-बार सोचने, समझने तथा आत्म मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करता है। 'सेवा भाव', 'सादी जिंदगी' और 'ऊंची निगाह' जो साहित्य और साहित्यकार के लिए जरूरी माना गया, क्या उसकी जगह 'धन-वैभव से प्यार' और 'स्वार्थमय जीवन' ने तो नहीं ले ली है? पूंजी और बाजार के द्वारा सत्ता के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हस्तक्षेप से साहित्य में उन लोगों का प्रभाव बढ़ा है, जिन्हें धन-वैभव से प्यार है। सेवा और संघर्ष अतीत की बात है। जिधर देखिए उधर उत्सव..उत्सव...उत्सव। उत्सव धार्मिकता बढ़ी है। अब साहित्यकार जुलूसों में नहीं जलसों में मिलते हैं। मूवमेंट की जगह इवेंट का जोर है।

'रेवान्त' के लिए साहित्य की सोद्श्यता का प्रश्न हमेशा से प्रमुख रहा है। इसका अर्थ है कि साहित्य का काम उन लोगों की आवाज बनना है, जो बेआवाजा हैं। समाज का वह हिस्सा जो उपेक्षित है, शोषित व अवहेलित है, जीवन की आपाधापी व कश-म-कश की वज़ह से अपने सुख-दुख, भाव-विचार को बयां नहीं कर सकता है, उसकी आवाज साहित्य के माध्यम से व्यक्त हो। प्रेमचंद ने यही किया। इन्हीं के हक में उन्होंने सौंदर्य की कसौटी को बदलने की बात की। हमने मुक्तिबोध को आदर्श माना। उनकी संघर्ष परंपरा से जुड़ने की कोशिश की। 'रेवान्त' की ओर से 'मुक्तिबोध साहित्य सम्मान' की शुरुआत हुई। मुक्तिबोध ने संघर्ष किया और समस्याओं को चिन्हित किया। वे कहते हैं 'समस्या एक - मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में/ सभी मानव/सुखी, सुंदर व शोषण मुक्त कब होंगे?' आज कितने साहित्यकार, कलाकार और बौद्धिक हैं जिनके मन-मस्तिष्क में यह प्रश्न कौंधता है?

- *साहित्य का सरकारीकारण कोई नई बात नहीं है। कलावाद उसे समाज से विमुख करता है। आधुनिकतावादी दौर उदाहरण है। केदार, नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे कवि पार्श्व में धकेल दिए गए। 'भारत भवन' और 'पूर्वग्रह' मंडली 'परिमल' का आधुनिक संस्करण के रूप में सामने आई। इस सत्ता संस्कृति के बरक्स जनवादी धारा विकसित हुई। उसने साहित्य को जन चेतना से जोड़ा। मजदूर, किसान, आमजन उनका दुख-दर्द, संघर्ष और स्वप्न को साहित्य में केंद्रीयता मिली। साहित्य और साहित्यकार दोनों का चरित्र व भूमिका बदली। प्रतिक्रियावादियों द्वारा साहित्य की मुख्य धारा बनने की कम कोशिश नहीं हुई। इन कोशियों के बावजूद उनकी स्वीकार्यता नहीं हुई। आज भी प्रगतिशील-जनवादी धारा का प्रतिनिधित्व व प्रतिष्ठा कायम है। इसीलिए इस धारा के साहित्यकारों-कलाकारों को अपनी ओर करने के लिए उपक्रम तैयार किए गए। प्रलोभन का पूरा जाल है। लोग फंस रहे हैं। ढलुआ सतह पर लुढ़क रहे हैं। यह दो नावों की सवारी है।*

- *पाठकों को याद होगा, हमने दिसंबर 2013 के 'रेवान्त' के संपादकीय में कला-साहित्य के कारपोरेटीकरण पर अपनी चिंता जाहिर की थी। उस वक्त सैमसंग, इफ्को जैसी कंपनियां 'साहित्य प्रेम' प्रदर्शित कर रही थीं। साहित्य की दुनिया में फेस्ट, फेस्टिवल, कार्निवाल का आयोजन हो रहा था। साहित्य के क्षेत्र में पतनशील प्रवृत्तियां अपनी जगह बना रही थीं। मूर्धन्य प्रगतिशील आलोचक द्वारा एक जघन्य अपराधी की पुस्तक का लोकार्पण किया गया। उसकी सामाजिक सांस्कृतिक छवि चमकाई गई। वहीं, 'जनता का आदमी' का क्रांतिकारी कवि सत्ता के 'कविता दरबार' को सजाने में जुटा था। हमारा मत था कि यह सब जन*

संस्कृति और अभिजन संस्कृति के बीच की विभाजन रेखा को धुंधला करना और साहित्य सृजन व बौद्धिक उत्पादन को नवउदारवाद के अनुकूल ढ़ालना है।

10 साल पहले जो इक्का-दुक्का घटनाएं थीं, वे आम प्रवृत्ति बनी हैं। इस दौरान सत्ता, पूंजी, बाजार का गठजोड़ बढ़ा है। उसका व्यापक प्रचार प्रसार और जनजीवन में घुसपैठ हुई है। संस्थाएं कमजोर हुई हैं। असहमति के विचारों का स्पेस कम हुआ है। लोकतंत्र के पाए हिल रहे हैं। फेस्ट, फेस्टिवल, साहित्य आजतक, संवादी... आदि के माध्यम से साहित्य के कॉरपोरेटीकरण की प्रक्रिया संस्थाबद्ध हुई है। कॉरपोरेट मीडिया, अखबार, बाजार, पूंजीवादी संस्थाओं, अकादमियों, व्यक्तियों आदि के माध्यम से वह काम करती है। इनके वर्ग चरित्र को समझना कठिन नहीं है। साहित्य की दुनिया भी 'धन और वैभव' के प्रभाव में है। उसके मूल पर संकट है। सादगी और शालीनता की जगह चमक-दमक, दिखने-दिखाने की संस्कृति हावी है। इसने प्रगतिशीलों-जनवादियों को भी आकर्षित किया है। उनके बीच अपनी जगह बनाई है। हमारे साहित्यकार बंधु इसके मोहपाश में बंध रहे हैं। वह समझ नहीं पा रहे हैं कि जिनके लिए उनके अंदर हिरण इच्छाएं कुलांचे मार रही हैं, वे मृगमरीचिका हैं। उन्हें पूंजी की जिस संस्कृति का विरोध करना चाहिए, वह उसके पक्ष में खड़े हो रहे हैं। यह तो उसी डाल को काटना है, जिस पर बैठे हैं। यह सारा अभियान कला, साहित्य व विचार की दुनिया का गोदीकारण है। इसका मक़सद बौद्धिक क्षेत्र में अपना दायरा बढ़ाना, अपने पक्ष में समर्थन जुटाना और अपनी विश्वसनीयता स्थापित करना है। लोकतंत्र का शासन भ्रम भी पैदा करता है।

● *हम सत्ता, पूंजी और बाजार की शक्तियों से उम्मीद नहीं कर सकते हैं कि वे साहित्य को गरिमा प्रदान करेंगे तथा विचारों की स्वतंत्रता का सम्मान करेंगे। जिस वर्ग के हाथ में राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था होती है, सांस्कृतिक व्यवस्था भी वह अपने अनुरूप ढ़ालता है तथा सृजन और बौद्धिक उत्पादन को भी नियंत्रित करता है। परंतु हम उन रचनाकारों से अवश्य उम्मीद करते हैं जो प्रगतिशील-जनवादी मूल्यों के पक्षधर हैं। साहित्य सृजन को लेकर प्रतिबद्ध हैं। जन सरोकार उनके संस्कृति कर्म का प्रमुख पहलू है। वर्तमान में ऐसे रचनाकारों का सत्ता परस्त कॉरपोरेट मीडिया तथा प्रतिक्रियावादी मंचों के द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों का हिस्सेदार बनना जरूर सोचने के लिए बाध्य करता है। इससे प्रतिरोध कमजोर हुआ है या वह बनावटी व सजावटी हुआ है। सबसे दुखद और चिंताजनक पहलू प्रगतिशील-जनवादी संगठनों से जुड़े कुछ रचनाकारों का ऐसे प्रायोजित आयोजनों में शामिल होना है। उनका 'गिरना' बकौल कमलानंद झा 'यह दोनों ओर पानी मारना है'। मुक्तिबोध ने कहा था 'तय करो किस ओर हो तुम'। उनके लिए 'तय करना' बेमानी है। यह लेखकीय स्वतंत्रता पर आघात है। उनके तर्क अजीबोगरीब हैं जिसमें वे 'जनता' और 'सत्ता' दोनों का सामान्यीकरण कर डालते हैं। कुल मिलाकर 'गुटके के दुर्गंध' ने सांस्कृतिक वातावरण को प्रदूषित किया है।*

आखिरकार इस परिघटना की क्या व्याख्या हो सकती है सिवाय इसके कि अंततः इससे जन संस्कृति और अभिजन (कॉरपोरेट) संस्कृति के बीच का विभाजन धुंधला हुआ है/ हो रहा है और हमारे सांस्कृतिक आंदोलन की विश्वसनीयता खतरे में पड़ रही है। अंततः यह प्रगतिशील जनवादी आंदोलन के अंदर पूंजी और सत्ता की संस्कृति की अभिव्यक्ति है। इस परिघटना का सार यही है कि इससे संघर्ष किए बिना प्रतिरोध के साहित्य का सृजन संभव नहीं है।

● *'रेवान्त' के इस अंक में विभिन्न स्तंभों के साथ हिंदी आलोचना की दशा-दिशा पर विचार के मकसद से आलेख है। पहले भी आलोचना को लेकर रचनाकारों की शिकायत रही है। आलोचकों पर 'रुचि की तानाशाही' जैसे आरोप लगे हैं। वर्तमान में तो यह प्रायोजित होने लगी है। वह रचनाओं के अंदर प्रवेश करने तथा उसकी 'मार्गदर्शिका न बनकर उसकी छंदानुगामी' बन गई है। इसी की पड़ताल करता तथा 'आलोचना के मायने' पर विचार करता जाने-माने कवि-आलोचक सुशील कुमार का आलेख है। लेखकों, आलोचकों तथा पाठकों से इस संबंध में विचार आमंत्रित है।*

अंत में, फिल्मकार श्याम बेनेगल, तबला वादक जाकिर हुसैन, लोकगायिका शारदा सिन्हा, कथाकार विजयकान्त, गीतकार शांति सुमन, मार्क्सवादी बुद्धिजीवी आर.के. सिन्हा, उर्दू शायर मकबूल जायसी, सोशल एक्टिविस्ट जीएन साईंबाबा, गजलकार धर्मेंद्र कटियार, कवि-कथाकार विजय गौड़ आदि के निधन पर अपना श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

– कौशल किशोर